ISSN 2455-5169

परिवर्तन : साहित्य, संस्कृति एवं सिनेमा की वैचारिकी

# आल्ह खंड में अभिव्यक्त स्त्री विषयक अस्मिता का प्रश्न

**अभिनव**

शोधार्थी, पीएच. डी. हिन्दी
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला
abhinav15081988@gmail.com

**स्त्री** का स्थान समाज में सदैव हाशिये पर रहा है। राजनैतिक, सामाजिक, एवं आर्थिक स्तर पर सदैव उसे दुर्बल ही रखा गया। इस अनुचित सामाजिक ढांचे और अपने सामाजिक अधिकारों की प्राप्ति हेतु जो आंदोलन या विमर्श प्रकाश में आया उसे नारीवाद या स्त्री विमर्श का नाम दिया गया। "पुरुषों के समकक्ष स्त्रियों को राजनीतिक, सामाजिक और शैक्षिक समानता का आंदोलन जिसे कुछ वर्ष पहले तक 'नारीवाद' कहा जाता था। अंग्रेजी में इसके लिए feminism शब्द प्रचलित है। इसदृष्टि से इसके लिए 'नारीवाद' नाम ही ज्यादा सार्थक है।"[1] न केवल राजनैतिक-सामाजिक अपितु साहित्य के परिप्रेक्ष्य में भी स्त्री जगत की वैचारिकी उनकी समस्याएं उभर कर सामने आयी। स्त्री अस्मिता एवं पहचान का प्रश्न नया नहीं है। प्रारम्भिक काल से ही स्त्री को विविध रूपों में आँका गया। उनका पुरुष प्रधान समाज में अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु शोषण हुआ। उन्हें न केवल शारीरिक अपितु बौद्धिक स्तर पर भी कमतर आँका गया। उन्हें किसी भी क्षेत्र में निर्णय लेने का अधिकार लंबे समय तक नहीं था। "नारियां पहले पुरुषों के मुकाबले शारीरिक और बौद्धिक रूप से हीनतर समझी जाती थीं। कानून और धर्मशास्त्र दोनों ही ने उनकी पराधीनता की व्यवस्था दे रखी थी। नारियां अपने नाम से कोई संपत्ति नहीं रख सकती थीं, व्यवसाय नहीं कर सकती थीं, न ही वे अपने बच्चों पर अथवा यहाँ तक की स्वयं अपने ऊपर कोई अधिकार जता सकती थीं।"[2]

भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में स्त्री को अनेक देवीय रूपों में पूज्यनीय माना गया है। दुर्गा, काली, सरस्वती, लक्ष्मी, चंडी आदि भिन्न-भिन्न रूपों में इनकी पूजा-अर्चना धार्मिक आस्था का प्रमुख बिन्दु रहा है। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता कहकर उन्हें अत्यंत ऊंचा स्थान दिया गया है। मातृदेवी के दुर्गा, काली, चंडी या अन्य कई नामों और रूपों में उसे शक्ति का प्रतिनिधि माना जाता है।"[3] परंतु यह दृष्टि एकांगी है। जहाँ स्त्री को ईश्वरीय तुल्य माना गया वही प्रत्येक काल में स्त्री को अपनी अस्मिता एवं पहचान के लिए संघर्ष भी करना पड़ा है। आल्ह खंड इसी स्त्री विषयक अस्मिता पर प्रश्न उठाने वाला आदिकालीन ग्रंथ है। जिसमें स्त्री के अनेक रूपों, गुणों एवं त्याग का महिमा-मण्डल तो किया गया है परंतु वहीं उनकी समाज में दुर्बल स्थिति का दर्शन भी मिलता है। "ये स्त्रियाँ महल और

परिवार की चहारदीवारी में ही बंद थीं और उन्हें स्वतंत्र निर्णय लेने की अनुमति नहीं थी, किन्तु शिक्षा, युद्ध और राजनीति का ज्ञान इन्हें अवश्य प्राप्त था।"[4] आल्ह खंड में अनेक स्त्री पात्र है जिनमें रानी मल्हना, दिवला, तिलका, राजकुमारी चंद्रावलि, बिजमा, बेला, सुनवा, गजमोतिन, फुलवा आदि प्रमुख हैं। इनके माध्यम से तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति एवं दशा को देखा जा सकता है। सामान्य जनमानस की तुलना में राज परिवार की कन्याएँ अच्छी स्थिति में थी परंतु उनको अधिकारों के संदर्भ में पुरुषों के समतुल्य नहीं रखा जाता था। तत्कालीन समाज में बहू विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी। आल्ह खंड में आल्हा के पुत्र इंदल के तीन विवाहों का वर्णन मिलता है। जो कि विवाह इंदल द्वारा बलखबुखारे, पथरियाकोट तथा सिंहलद्वीप की लड़ाई में सम्पन्न किए गए।

"भई तयारी तब मलहन में बेटी बिदा दई करवाय।
चितरेखा भेंटन लागी माता लीन्हों कंठ लगाय।।
फिरि फिरि भेंटी सब सखियन को सखियां रोय रोय रहि जाय।
जाय पालकी में बैठी जब पालकी चली बरायत माहिं।।"[5]

प्रथम विवाह बलखबुखारे के युद्ध पश्चात चित्ररेखा के साथ सम्पन्न होता है। जिसमें विदाई के समय माता-पिता, सखियों आदि के विलाप का प्रसंग वर्णित है। इंदल का द्वितीय विवाह पथरिया कोट की लड़ाई के तदुपरान्त जयचंद की पुत्री से सम्पन्न हुआ था।

"बिटिया ब्याहूँ मैं जैचंद की औ लाखन को करौ हलाल।
पथरी मारौं ज्वाला सिंह की मुंह में ठाँसी देउ तलवार।"[6]

जयचंद के विरोध जताने पर पथरियाकोट में भयंकर युद्ध हुआ जिसमें जयचंद का पुत्र लाखन परास्त हुआ और उसे अपनी पुत्री का विवाह इंदल के संग करना पड़ा। भारतीय समाज में पुत्री के विवाहोपरांत उसके परिवार वाले जीवन भर वर पक्ष के प्रति झुकाव रखते हैं। इसके साथ ही विपरीत परिस्थितियों में सहायता को वचनबद्ध रहते हैं।

"हाथ जौरिकै राजा बोलो मेरि तासीर माफ ह्वै जाय।
बहनी करिके सुनमा देहौं बेटी की दऊँ भौंरी डार॥
कर चुकाऊंगा तेरिगढ़िया में अब मैं ताबेदार तुम्हार।
जंह कहिं याद करौगे हमको कबहूँ उजर करुंगों नाहिं॥"[7]

इस प्रकार के प्रसंग तत्कालीन परिवेश में ही नहीं अपितु आज भी हमारे समाज में व्याप्त है जहाँ पुत्री के घर का पानी पीना भी अपमान माना जाता है। परंतु पिता पक्ष के झुकाव के पश्चात भी पुत्री में स्वाभिमान एवं परिवार को जोड़कर रखने के गुण का महिमा-मण्डल भी आल्ह खंड में मिलता है। सुनवा के स्वाभिमान को चोट लगने पर वह कह उठती है-

"काछी कुरमी की न बेटी ना कहूँ नीच जाति की नार।
भारी राजा की बेटी हूँ भारी भूप पती भरतार॥"[8]

इंदल का तृतीय विवाह सिंहलद्वीप के राजा सरहनाग की पुत्री पद्मिनी के साथ हुआ-

"याविधि ब्याह भयो इंदल को तीसर नार पद्मिनी साथ।
जैसी सुनी सिखी हम वैसी झूँठ साँच जानै करतार"[9]

आल्ह खंड में न केवल इंदल अपितु अनेक राजाओं के एकाधिक विवाह के प्रसंग विद्यमान हैं। इनमें राजा परमाल, पृथ्वीराज चौहान, जयचंद आदि राजा प्रमुख है। पथरियाकोट के युद्ध में जब जयचंद लाखन को मोर्चे पर भेजता है तब स्वयं की बारह एवं लाखन की सोलह रानियों का वर्णन देते हुए जयचंद कहता है-

"बारह रानी में इकलौता सोलह रानिन के क्षृंगार।
जो कहिं खप गये गढ़ पथरी में पीछे नाम लिवैया नाहिं।।"[10]

इस प्रकार तत्कालीन समाज में बहु विवाह, अशिक्षा, अधिकारहीनता जैसी समस्याओं से स्त्री को कालांतर में और अधिक दुर्बल बनाया जाता रहा। इसके उलट उन्हें शक्ति विद्या एवं सम्पदा का रूप मान कर उन्हें पूजा भी गया।

"पूजन करिकै जगदंबा को अपनो शीश चढ़ावन लागि।
आभा बोली तब देवी की तुम्हरो काम सिद्ध ह्वै जाय॥"[11]

महोबा की शारदा एवं मनिया देवी का आल्ह खंड में बारंबार स्मरण किया गया है। जिसमें चंदेलों व बनाफ़रों का अपनी ईष्ट देवीयों में श्रद्धा व आस्था का भाव द्रष्टव्य है-

"सुमिरन करिकै नारायण को मनिया सुमिरि महोबे क्यार।

खैंचि शिरौही लइ रूपनाने बारी कठिन करै तलवारि"[12]

आदिकालीन हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ संवत 1000 से संवत 1375 तक माना जाता है। आल्ह खंड का कथानक इसी कालखंड के मध्य अर्थात 1165 ई. से 1202 ई. तक का है। जिसे जगनिक ने परमाल रासो में वर्णित किया एवं कालांतर में अल्हैतों द्वारा आल्हा के गेय रूप में अद्यतन प्रस्तुत है। "यह विचारणीय है कि वह परमाल के शासनकाल (1165 ई. से 1202 ई.) तक उनका दरबारी कवि रहा।"[13] यह वह कालखंड था जिसमें नारी भोग, क्रय-विक्रय एवं मनोरंजन का साधन मानी जाती थी। समाज की इस प्रकार की प्रवृत्ति साहित्य में उतर आना स्वाभाविक था। आल्ह खंड में भी विवाह को युद्ध संस्कृति एवं पराक्रम के प्रतीक रूप में अधिक जोड़ा गया। प्रेम का स्थान इस संदर्भ में कम है। प्रेम को त्याग, समर्पण एवं सम्मान का सबल पक्ष माना जाता है परंतु क्षणिक लगाव के उपरांत स्त्री को प्राप्त करने की लालसा में युद्ध करना अहंकार एवं दंभ माना जाना चाहिए। इंदल ने बलखबुखारे की राजकुमारी को धांधू के विवाह में देखा और विवाह का विचार कर चित्रलेखा को प्राप्त करने की लालसा की। इस उद्देश्य हेतु उसने जो नरसंहार किया वह रक्तपात प्रेम के लिए नहीं अपितु शक्ति प्रदर्शन अधिक माना जाना चाहिए।

"ब्याह भयाथा जब धांधू को इंदल गये बरायत माँहि॥
इंदल देखे तहँ बेटी ने तबते मनमें करै विचार।
या तो ब्याह हो इंदल संग नातर क़ारी रहौ संसार॥
यह सोच बेटी को निशिदिन कैसे मिलें इंदल सि क़ार"[14]

आल्ह खंड में राज परिवारों का पारस्परिक संघर्ष व्यर्थ अभिमान, अनैतिकता, अनुचित मापदण्डों एवं मान-मर्दन से भरा पड़ा है। छोटी-छोटी बातों को लेकर मनमुटाव रखना, युद्ध तैयारी में जुट जाना एवं प्रतिशोध की भावना से समूचा आल्ह खंड अटा पड़ा है। तीज-त्यौहारों, उत्सवों पर प्रतिशोध की भावना पूर्ण कर लेना इन राजाओं के लिए अनैतिक न होकर गर्व की बात थी। परमार्दिदेव का पुत्र ब्रह्मानन्द जब पृथ्वीराज चौहान की पुत्री बेला से विवाह कर लेता है तब इस बात का प्रतिशोध पृथ्वीराज चौहान भुजरियों के पर्व पर परमार्दिदेव की पुत्री चंद्रावली से लेना चाहता है "क्योंकि महाराज परिमाल की पुत्री चंद्रावली डोले में बैठकर भुजरियाँ सिराने के लिए कीरत सागर पर उस दिन जाएगी और पृथ्वीराज युद्ध करके चंद्रावली का डोला छीनकर, उसका विवाह अपने पुत्र के साथ करके बेला के विवाह का बदला ले सकते थे।"[15]

इस प्रकार की घटनाओं से यह ध्यातव्य है कि स्त्री को तत्कालीन परिवेश में परिवार के सम्मान का प्रतीक माना जाता था जो आज के समाज में भी प्रासंगिक है। देखने योग्य बात यह है कि शक्तिशाली साम्राज्य को झुकाने के लिए उसकी सबसे बड़ी कमजोर कड़ी स्त्री ही थी। किसी राजा का मान-मर्दन करने के लिए उसकी रानी या पुत्री को हर लेना सामान्य सी बात थी। बौरीगढ़ के राजा वीरशाह द्वारा आल्हा-ऊदल कि अनुपस्थिति में आक्रमण कर चंद्रावली का विवाह अपने पुत्र से करवाना, परमार्दिदेव का महोबा पर आक्रमण कर मल्हना से विवाह कर महोबा पर काबिज हो राज्यविस्तार करना आदि सभी प्रसंग नैतिकता के प्रतिकूल है। "राजपूत राजाओं ने प्रतिशोध के लिए युद्ध तो किए, किन्तु अपनी रक्षा का ध्येय बहुत कम समय तक प्रधान रहा; उनके लिए राज्य एवं व्यक्तिगत गौरव की रक्षा का नशा अधिक महत्वपूर्ण हो गया।"[16] अपने प्रेम की प्राप्ति एवं अहंकार हेतु राजपूत राजाओं द्वारा किये गए युद्धों को क्षात्रधर्म या युद्ध संस्कृति का नाम दे दिया गया। कालांतर में यही राजपूत सम्प्रदाय पारस्परिक क्लेष एवं मतभेदों के कारण दुर्बल हो गए और विदेशी या पड़ोसी राजाओं द्वारा परास्त किये गए। "इसका एक साधारण सा कारण यह था कि हर शासक के लिए युद्ध एक परंपरा हो गई थी। दो संघर्षरत्त साम्राज्यों के बीच वैवाहिक संबंध स्वार्थ की विषम खाई को पाटने में थोड़ा भी समर्थ नहीं हो पाता था।"[17] इनकी यह हानि इनके साम्राज्य पतन तक सीमित न होकर स्त्री जगत पर भी पड़ा और जौहर, सती एवं स्त्री के साध्वी बन जाने की धारणाओं ने जन्म लिया।

राजाओं के बहू विवाह के उलट स्त्रियाँ एक विवाह ही करती थी और अपने पति के मरने के पश्चात वे पराए पुरुष का विचार तक नहीं लाती थी। यदि अन्य राजा राज्य पर अधिकार कर लेता तो ये स्त्रियाँ जौहर या सती हो जाना पसंद करती थी। "राजपूत जाति की एक उल्लेखनीय विशेषता थी-वीरता और आत्मोसर्ग। राजपूत नारियां भी इस दिशा में किसी से पीछे नहीं रहीं, जौहर उनके आत्म-बलिदान और शौर्य का प्रतीक है।"[18] परंतु स्त्री का महिमा-मंडन कर तत्कालीन समाज में स्त्री विषयक अस्मिता का पूर्ण-रूपेण ह्रास किया जाता रहा। तत्कालीन समाज में स्त्री आत्मनिर्भर नहीं थी। स्त्री जन्म से विवाह तक पिता, विवाह के पश्चात पति एवं पति की मृत्यु के पश्चात पुत्र के संरक्षण में जीवन निर्वाह करती थी। परमाल रासो में पति की मृत्यु के तदुपरान्त उसकी दशा पर पंक्तियाँ उल्लेखित हैं-

"पिय के मरत त्रिया रहै, करै पुत्रकै आस।
ते रानिय निहचै करै, महा नर्क मंह बास॥"[19]

स्त्री संदर्भ में इस प्रकार का जीवन चक्र आज के आधुनिक भारतीय समाज में निर्विरोध चल रहा है। "विधवा जीवन बड़ा होता था। उसे तपस्या का जीवन बिताना पड़ता था; परिवार और पुत्र के संरक्षण में रहना पड़ता था।"[20] आल्ह खंड की स्त्री पात्र भिन्न-भिन्न राज परिवारों से संबंध रखती हैं। उनके पुनर्विवाह का प्रसंग पूर्ण रूप से अनुपलब्ध है परंतु आदिकालीन परिवेश में "पाराशर ने पाँच परिस्थितियों में स्त्री के पुनर्विवाह का आदेश दिया है। पति की मृत्यु, अनिश्चित लंबा प्रवास, संन्यास, नपुंसकता और पतितावस्था में स्त्री पुनर्विवाह कर सकती थी। बाल विधवा का पुनर्विवाह विहित था किन्तु उच्च श्रेणी में प्रायः विधवा विवाह नहीं होता था।"[21] आल्ह खंड में बाल विवाह का प्रसंग सामान्य सी बात है। स्त्री का किशोरावस्था तक आते ही उसका विवाह अवश्यंभावी था। आल्ह खंड में इसका उदाहरण दर्शनीय है-

"बारह वर्ष की कन्या ह्वै गई जोबन अंग में नाहिं समाय॥
एक दिन महलन में रोई औ गिर पड़ी धरनि में जाय॥"[22]

स्त्री प्रत्येक काल में अपनी अस्मिता पहचान एवं अस्तित्व को बनाए रखने हेतु संघर्षरत रही है। एक लंबे संघर्ष के क्रम में सफल भी रही है। पुत्री, पत्नी एवं माता के रूप में वो जहाँ आदरणीय रही है वहीं उसकी तुलना ईश्वर से की गई है परंतु बाल विवाह, बहू विवाह, विधवा संताप, सती प्रथा, अशिक्षा एवं राजनैतिक-सामाजिक स्तर पर अधिकारच्युत स्थिति ने स्त्री वर्ग को चुनौतियाँ दी है। स्त्री की स्थिति आदिकालीन कालावधि के सापेक्ष अद्यतन काल में एक सीमा तक परिवर्तित हुई परंतु उसके दैहिक एवं पुरुष प्रधान सामाजिक परिवेश में उसका शोषण निरंतर चल रहा है। उसे अब भी राजनैतिक-सामाजिक परिप्रेक्ष्य में संघर्ष करना पड़ रहा है। स्त्री संदर्भित संघर्ष एवं समस्याओं को साहित्य ने पूरी सशक्तता के साथ प्रकट किया है। आल्ह खंड इस परिप्रेक्ष्य में एक प्रमुख कृति है जो स्त्री विषयक अस्मिता एवं पहचान को लेकर समाज से प्रश्न करती प्रतीत होती है।

**संदर्भ :**

1. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ-385, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
2. वही-385
3. दुबे, श्यामचरण, भारतीय समाज, पृष्ठ-97,राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, दिल्ली।
4. त्रिपाठी, आनंदप्रकाश, बुंदेलखंड में स्त्री, पृष्ठ-50, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली।
5. सीतारामजी, नारायणप्रसाद, आल्ह खंड, पृष्ठ-492, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई।
6. वही 507

7. वही513
8. वही 495
9. वही 542
10. वही 515
11. वही 282
12. वही228
13. कुमुद, अयोध्या प्रसाद, जगनिक,पृष्ठ-18, साहित्य अकादमी, दिल्ली।
14. सीतारामजी, नारायणप्रसाद, आल्ह खंड, पृष्ठ-459, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई।
15. श्रीवास्तव,श्यामबिहारी, बुंदेलखंड का रासो काव्य, पृष्ठ-51,आराधना ब्रदर्स, कानपुर।
16. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-54,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
17. मिश्र, केशवचंद्र, चंदेल और उनका राजत्वकाल, पृष्ठ-144, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
18. शर्मा,शिव कुमार, हिन्दी साहित्य युगऔर प्रवित्तियाँ, पृष्ठ-37,अशोक प्रकाशन, दिल्ली।
19. दास, श्यामसुंदर,परमाल रासो, पृष्ठ-357,नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
20. हिन्दी साहित्य का वृहत्त इतिहास केशव मिश्र, केशवचंद्र, चंदेल और उनका राजत्वकाल, पृष्ठ-92, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
21. वही 91
22. सीतारामजी, नारायणप्रसाद, आल्ह खंड, पृष्ठ-515, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई।